International Journal of Advance and Applied Research
www.ijaar.co.in
ISSN – 2347-7075 Impact Factor – 8.141
Peer Reviewed Bi-Monthly
Vol. 12 No.1 Sept-Oct 2024

साहित्य और सिनेमा

Dr.Sumangala C Angadi
HOD. Dept of Hindi
MGVC Arts Commerce and Science college Muddebihal
Tq: Muddebihal, Dist: Vijayapura
Corresponding Author- Dr.Sumangala C Angadi
Email: scangadi74@gmail.com
DOI- 10.5281/zenodo.14015948

प्रारूप

साहित्य और सिनेमा का सम्बन्ध एक अच्छे अथवा बुरे पड़ोसी, मित्र या संबन्धी की तरह एक दूसरे पर निर्भर है। यह कहना जायज होगा कि दोनों में प्रेम संबंध है। इनके संबंध की जाँच-पड़ताल कर यह जानना उपयोगी होगा कि इनकी नजरें चार होने से अब तक की प्रेम-यात्रा में इनके संबंध प्रगाढ़ हुए अथवा विकृत ।

साहित्य शताब्दियों का अनुभव समृद्ध एक विवेकी बुजुर्ग है और सिनेमा एक अपरिपक्व तरुण । सिनेमा ने चौरानले के दिसंबर में अपनी पहली शताब्दी पूरी की। इसे अभी बालिग होना है। बहुत कुछ सीखना है। सिनेमा ने अपने आरंभिक चरण में और अपना भविष्य. सँवारने के लिए साहित्य से ही प्राण-तत्व किया। साहित्य के पास सिनेमा की जरूरतों को पूरा करने के लिए विपुल भंडार है।

सिनेमा का इतिहास बहुत पुराना नहीं होते हुए भी इतने कम समय में समाज को जिस तरह प्रभावित किया है वह बताना असाद्य है। सिनेमा हमारे सामाजिक जीवन को इस तरह प्रभावित किया है कि हम उसी के काल्पनिक दुनिया में सैर करते हुए वास्तविक धरातल की तलाश करते है। सिनेमा के द्वारा ही हम नए समाज की तलाश में भटक रहे हैं। सिनेमा जहां समाज को प्रभावित किया है वहीं यह अर्थ व्यवस्था का सुदृढ़ नींव भी बन गया है। सिनेमा वैश्विक अर्थव्यवस्था तक को प्रभावित कर रहा है।सिनेमा का संबंध साहित्य से जोड़ते हैं तो कई बिन्दुओं से इनकी आंतरिक संबंधो को तानेबाने के कई परतों को खोलना होता है, ऐसे जगहों पर आकर ही सिनेमा और साहित्य के संबंध तिक्त हो जाते है। "सिनेमा ने अपने आरंभिक चरण में साहित्य से ही प्राण-तत्व लिया, यह उसके भविष्य के लिए जरूरी भी था। दरअसल सिनेमा और साहित्य की उम्र में जितना अधिक अंतर है उतना ही अंतर उनकी समझ और सामर्थ्य में भी है।

बीज शब्द: सिनेमा, साहित्य, सामाजिक जीवन, काल्पनिक दुनिया, कथा, घटनाएं, समाज पर इसका प्रभाव, सफलता, समस्याएं

शोध लेख

साहित्य और सिनेमा है। अलग- माध्यम है। जब साहित्य माध्यम फिल्म माध्यम में रूपांतरित होता है तो उसमें परिवर्तन अवश्यम्भावी हो जाता है। सिनेमा को आधार साहित्य होता है, क्योंकि बुनियादी रूप में उसमें कथा, घटनाएँ, पास और संवाद होते ही है। यह अलग बात है कि हर एक रचना साहित्य नहीं होती लेकिन होती तो वबह सिर्फ रचना ही है।

भारत में फिल्मों ने 100 वर्षों की यात्रा पूरी कर ली है। दरअसल वह अपने दौर का सबसे बड़ा चमत्कार था जब हिलती - डुलती. दौड़ती कुदती तस्वीरों पहली बार पर्दे पर नजर आई। हम शुरुआती सिनेमा की ओर नज़र दौड़ाएं तो पाते हैं कि इसकी शुरुआत ही पौराणिक साहित्य के सिनेमाई रूपांतरण से हुई 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'भक्त प्रहलाद, लंका दहन, 'कालिंग मर्दन, 'अयोध्या का राजा, सैरेन्द्री

(रामायण, और महाभारत आदि जैसी प्रारंभिक दौर की फिल्में धार्मिक ग्रंथों की कथाओं का अंकन थीं। इन फिल्मों का धार्मिक और आर्थिक के साथ-साथ सामाजिक उद्देश्य भी थी।

सन 1912 में मुंबई के 'रामचन्द्र गोजन टोन" द्वारा निर्मित फिल्म "पुंडलीक" को अपार सफलता मिली। यह फिल्म महाराष्ट्र के ख्यातिप्राप्त हिन्दू संत के जीवन पर

आधारित "रामाराव किर्तीकर छद्वारा लिखित नाटक पर आधारित थी। इसके बाद दादा साहब फाल्के द्वारा निर्मित 'राजा हरिश्चंद्र फिल्म प्रदर्शित की बाई। सन, 1931 में भारत में सावक फिल्मों का आरंभ आर्देशिर ईरानी" द्वारा निर्मित फिल्म "आलम आरा से हो गया था। भारतीय सिनेमा का स्वरूप बहुत तेजी से बदलने लगा था। अब दर्शकों का सोच बदलने लगा तो फिल्म पौराणिक घटनाओं से हटकर सामाजिक समस्याओं पर आकर डटे। सामाजिक को ब्रो केन्द्र में राखकर कई बहुचर्चित फिलों बनी जो समाज को नई दिशा देने में सक्षम थे। मंचन, खानदान, ममता, किस्मत, नादान, नौकर, जमीन, दोस्त, ज्वार-भाटा, जुगनू, नौका डूबी, बरसात, जीत आदि सुपरहिट फिल्में आई। सामाजिक फिल्मों के साथ - साच ऐतिहासिक फिल्में भी आ रही थी जैसे- सिकंदर, अनार कली, मुगल--आजम आदि। बदलते समय के साथ-साथ सामाजिक फिल्मों के साथ रोमांटिक फिल्में दर्शकों को ज्यादा पसंद आने लगी और रोमांटिक फिल्मों की एक नया दौरा ही शुरू हो गया। रोमांटिस्म ने भारतीय फिल्मों को इतना प्रभावित किया कि आज भी तो फिल्म के मूल तत्व है।

1933 में प्रेमचंद मुंबई पहुंच कर फिल्म जगत के लिए कहानी लिखना सम् शुरू किए। प्रेमचन्द की कहानी पर मोहन भावनानी के निर्देशन में फिल्म 'मिल मजदूर बनी। निर्देशक ने मूल कहानी में कुछ बदलाव किए जो प्रेमचन्द्र को पसंद नहीं आए। यही फिल्म पंजाब में "गरीब मजदूर' के नाम से प्रातर्शित हुई।

1934 में प्रेमचंद्र की ही कृतियों पर नवजीवन और सेवासदन बनी लेकिन छोनों जिलों फ्लाप हो गई। 1941 में प्र. आर. कारदाब ने प्रेमचन्द की कहानी त्रिया चरित्र को आधार बना कर 'स्वामी' नाम की फिल्म बनाई जो चाली नहीं। 1946 में प्रेमचन्द के उपन्यास 'रंगभूमि पर बसी नाम से फिल्म बना। इस समय अमृतलाल नागर, उपेन्द्रनाथ अबक, भगवती- चरण वर्मा अँब पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' फिल्मों में हाथ आजमाने पहुंच चुके येक, थे ओर लेखक गणों को सिनेमा की आवश्यकताओं और सिगमाओं को समझ चुके थे। इसलिए से कुछ समय तक वहाँ टिके रहे। इसी दौरान उन्होंने किसी साहित्यिक कृति को सिनेमा में नहीं बदला बाल्क डायरेक्टर और प्रोड्यूसर की मांग के मुताबिक पटकथा और संवाद लिखते रहे। उम्रा अपने विद्रोही और यायवारी की वजह से जल्द ही मुंबई को अलविदा कह आए। भगवती चरण वमी भी उसी माल वापस लौट आए। किशोर साहू फिल्मों के साथ कहानियाँ और नाटक भी लिखे, और इनके तीन कहानी संग्रह भी छपे। इन्होंने शेक्सपियर के नाटक 'हेमलेट पर इसी नाम से फिल्म जरूर बनाई लेकिन वह फ्लाप रही।

1941 में भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास 'चित्रलेखा पर केदारनाथ शर्मा ने इसी नाम से फिल्म बनाई और फिल्म सफल भी रही। इसे उस दौर की फिल्मों में अपवादस्वरूप लिया जा सकता है। फिर भी कई कारण ऐसे रहे कि चित्रलेखा की सफलता फिल्मकारों को हिन्दी की साहित्यिक कृतियों पर फिल्म बनाने के लिए प्रेरित नहीं कर सकी और जिन लोगों ने इक्का-दुक्का कोशिश की उन्हें असफलता की सामना करना पड़ा। उदाहरण के लिए 1960 में चंद्रधर शामी गलेरी की कहानी उसने कहा था पर इसी नाम से फिल्म बनी। आ. चतुरसेन शाक्त्री के उपन्यास पर धर्मपुत्र नाम से बी आर चोपड़ा ने फिल्म बनाई। रेणु की कहानी 'मारे गए' गुलफाम या तीसरी कसम बनी और तीनों फिल्म बुरी तरह फ्लूप रही। तीसरी कसम को भले ही उसकी श्रेस्टता के लिए राष्ट्रीय पुरस्कार भी मिला लेकिन फिल्म फ्लूप हो ने से भरी कर्ज के बोझ तले दब चुके इसके निर्माता गीतकार शैलेन्द्र को दुनिया से कूच करना पड़ा। राजेन्द्र सिंह बेदी की कृति एक चादर मैली सी पर भी जब फिल्म बनी तो वटे भी फ्लाप हुई।

प्रेमचन्द की मृत्यु के बाद उनकी तीन कहानियों पर फिल्में बनी लेकिन चर्चित हो सकी सत्यजित राय दवारा बनाई गई पहली हिन्दी फिल्म 'शतरंज के खिलाडी। तो क्या सत्यजित राय जैसे फिल्मकार ही हिन्दी साहित्य को सेलूलाइड पर उतारने में सक्षम थे। प्रेमचन्द जिनकी अधिकांश कहानियाँ और उपन्यास लोगों को बेहद पसंद आए। न केवल हिन्दी भाषियों को बल्कि भारत की अन्य भाषाओं और विदेशी भाषा के पाठकों को भी, तो क्या उनके साहित्य में फिल्म बनाने लायक कहानीपन नहीं था। हिन्दी भाषी फिल्मकारों में ही कोई कमी थी जो विदेशी फिल्मों से कहानियाँ चुराकर फिल्म बनाना ज्यादा आसान समझते हैं।

साहित्य और सिनेमा के अंतर्सम्बन्धों पर गुजराती फिल्म समीक्षक बकुल टेलर केहते है कि, साहित्यिक कृतियों पर बनी फिल्म अपने आप अच्छी हो, ऐसा नहीं होता, वास्तविकता यह है कि साहित्यिक कृति को सौंदर्यशास्त्र और सिनेमा का सौंदर्यशास्त्र अलग-अलग है और सिनेमा सर्जक

भी साहित्यकृति के पाठक रूप में साहित्यिक आस्वाद तत्वों पर मुग्ध होकर उनका सिने ममेटिक रूपांतरण। किए बगैर आगे बढ़ जाते हैं.।

एक अन्य तथ्य यह भी उल्लेखनीय है कि कई बार गलत पात्र चयन हसे भी साहित्यिक फिल्मों की आत्मा मर जाया करती है, इसका सबसे सटीक उदाहरण 'गोदानं फिल्म का है, जिसमें होरी की भूमिका में अभिनेता राजकुमार को ले लेने से यह फिल्म अविश्वसनीय लगने लगी कोंकि दमदार डायलॉग बोलने वाले राजकुमार कही से भी दीन-हीन होरी के रोल हमें फिट नहीं थे। इसके अलावा कृति के मुताबिक परिवेश का अंकन भी फिल्मकानों के लिए बड़ी चुनौती होती है, उदाहरण के लिए बंकिमचन्द्र की कृति पर बनी आनंदमठ, विमल मित्र कृत 'साहत बीजी और गुलाम, आर के नारायण के अंग्रेज़ी उपन्यास पर बनी 'गाइड'. उडिया लेखक फकीरमोहन सेनापति की रचना पर बनी 'दो बीघा जमीन' और मिर्जा हादी की उर्दू कृति पर बनी 'उमराव जान' फिल्मों की सफलता का सबसे बड़ा कारण परिवेश की समानुरूपता रहा है।

शरतचन्द्र के उपन्यास "देवदास" को कई भाषाओं में बनाया गया और अंत तक कई सेललाइड पर उतारा जा चुका चुका है। हर बार दर्शकों द्वारा सराहा गया है। इसके अलावा 'परिणीता" रवीन्द्रनाथ के पाथेर पांचाली, चोखेर बाली, नौका डूबी कई साहित्यिक कृतियों के आंधार पर सफल फिल्में बनी। सिनेमा में हिन्दी साहित्यकारों का असर सातवे दशक में नजर आता है। इसका प्रणेता अगर कमलेश्वर को कहा जाए तो गलत नहीं होगा। उपेन्द्रनाथ अश्क और अमृतलाल नागर के बाद कमलेश्वर है। वह महत्वपूर्ण हिन्दी साहित्यकार थे जिन्होंने सिनेमा की भाषा और जरूरत को बेहतरीन ढंग से समझा। टेलीविपन से शुरुआत कर उन्होंने सिनेमा में दखल दिया और लंबे समय तक टिके रही मुंबई में रहने के दौरान वह ऐसे फिल्मकारों के संपर्क में आए जो साहित्यिक रुचि रखते थे। कमलेश्वर के उपन्यास 'एक सड़क सत्तावन गलियों' और 'डाक बंग्ला' पर क्रमशः बदनाम बस्ती' (1371) और 'डाक ' बांग्ला ' (1974) बनी लेकिन सफल नहीं हो सकीं उनकी कहानी पर और भी फिल्में बनी लेकिन जब हुलजार ने कमलेश्क की कृति 'आंधी' और मौसम बनाई तो दोनों फिल्में मील के पत्तर साबित हुई।

सातवें दशक में एक और हिन्दी कथा साहित्य मैं बदलाव आ रहा था वहीं हिन्दी भाषी फिल्मकारों की संख्या भी बढ़ रही थी। बासु चटर्जी बांग्ला भाषी थे लेकिन उन्होंने हिन्दी साहित्य का गहरा अध्ययन किया था। राजेन्द्र यादव के उपन्यास 'सार आकाश पर उन्होंने फिल्म बनाई जो साफल नहीं हो सकी लेकिन मन्नू भंडारी की कहानी 'यही सर्च पर जब उन्होंने 'रजनीगंधा बनाई तो वह फिल्य लोकप्रिय साबित हुई। आठवें दशक तक आते आते बासु चटर्जी, हृषीकेश मुखर्जी, गोतिन्द निहलानी, श्याम बेनेगल, अरुण कौल गुलजार जैसे फिल्मकारों के होते हुए भी हिन्दी फिल्में भारी हिंसा और घटिया हास्य से लहूलुहान होने लगीं। कलात्मक फिल्मों का गला रुँचने लगा। नवें दशक तक आते-आते साहित्यिक कृतियों पर आधारित फिल्में नदारत होती गई। उधर कुछ साल पहले चेतन भगत के उपन्यास पर आधारित " थ्री ईडीसुट्स" है। काफी सफल रही। लेकिन इस्टेट्म, कई घो बॉलीवुड में शुरू से हिन्दी साहित्य पर आधारित फिल्में बनती रही हैं, यही नहीं, विदेशी लेखकों के उपन्यास और नाटकों पर आधारित फिल्में भी बनती रही हैं, जहाँ एक ओर शरतचान्द्र, रतीन्द्रनाथ टैगोर, बिमलराय, आर के नारायण, चेतन भगत जैसे जैसे वई लेखकों की रचनाओं पर अब तक काफी फिल्में बन चुकी हैं, वहीं दूसरी ओर शेक्सपियर, रास्किन बॉन्ड जैसे कई विदेशी लेखकों की रचनाओं पर भी फिल्मों बन चुकी है, विशाल भारद्वाजा की फिल्म ओमकार और मकबूल वहाँ सेकपपियर के नाटक ओ थैलो और मैकले थे पर आधारित थी, वहीं विशाल भारद्धाज की ही एक और फिल्म सांत खून माफ़, रस्किन बॉन्ड की कहानी सुजैन सुजैना सेवेन हसबैंड पर आधारित थी।

निष्कर्ष :

निष्कर्ष रूप में यह कहते हैं कि, हिन्दी साहित्यकारों को सिनेमा माध्यम की समझना होगा तभी तो हिन्दी साहित्य और सिनेमा की साझेदारी बढ़ेगी। सिनेमा के सकारात्मक पक्षा का उद्देश्य एक अच्छे समाज का निर्माण, समार के यथार्थ को सामने लाना है। हिन्दी फिल्म निर्माता-निर्देशकों का यह मानना है कि दर्शकों को नाथ-गाने-संगीत मुवं हिंसा और सेक्स से भरपूर अन्यत नाटकीय फिल्में ही पसंद आती है। लेकिन यह पूरा सच नहीं है, क्योंकि हिन्दी साहित्य पर आधारित 'तमस 'शतरंज के खिलाडी, आँधी', रजनीगंधा', 'सारा आकाश जैसी फिल्मों को दर्शकों ने बहुत पसंद किया। साहित्य दुनिया का प्राचीन कलारूप है और सिनेमा आधुनिक कलारूप: लेकिन दोनों ने एक-दूसरे को काफी प्रभावित किया है। सिनेमा एक ऐसा माध्यम है,

जिसमें सभी कलाओं का इन्द्र धुनुषी संगम देखा जा सकता है। फिल्म का प्राणतन्त उसकी कहानी' है। अगर कहानी ही कमजोर होगी तो फिल्म के सभी तकनीकी इफैक्टस भी निष्प्रभ हो जाते हैं। साहित्य की भाषा शब्दों पर आश्रित है तो सिनेमा की भाषा कैमरे से लिखी जाती है, कलम से नहीं। फिल्म चाहे वह किसी साहित्यकृति पर ही क्यों न आधारित हो निर्देशक की अपनी स्वतंत्र कलाकृति होती है। सिनेमा के एकारात्मक पक्ष का उद्देश्य एक अच्छे समाज का निर्माण, समाज के यथार्थ को सामने लाना है।

संदर्भ सूची

1. समकालीन सृजन हिन्दी सिनेमा का सच
2. इंटरनेट के दौर में हिंकी - जवाहर पुस्तकालय, हिन्दी पुस्तक प्रकाशक एवं वितरक मथुरा (3)
3. उत्तर आधुनिक मीडिया विमर्श - वाणी प्रकाशन 21-५ दरियागंज, नई दिल्ली - 110002
4. पत्रकारीता और भाहित्य जवाहर पुस्तकालय हिन्दी पुस्तक प्रकाशाक एवं वितरक